

---

प्रवचन-३५, गाथा-३८, रविवार, अषाढ़ कृष्ण १५, दिनांक १०-०८-१९८०

---

नियमसार ३८वीं गाथा। मुख्य बात है। एक ओर भगवान आत्मा तथा एक ओर पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान आदि। वह पर्याय वास्तव में आत्मा नहीं है। आहाहा! जो आत्मा यहाँ उपादेयरूप से कहा गया है, वह आत्मा तो पर्यायरहित है। यह आया न देखो! **स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि...** आहाहा! ज्ञायकभाव एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक या सर्वार्थसिद्धि की चाहे जो पर्याय अन्दर हो, परन्तु द्रव्य तो निरावरण त्रिकाली शुद्ध है। उस द्रव्य को यहाँ स्वद्रव्य कहा है और **स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है — ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** उपादेय करती है पर्याय, परन्तु उपादेय है तो द्रव्य। समझ में आया? आहाहा!

फिर से। त्रिकाली स्वभाव जो भगवान पूर्णानन्द प्रभु, वह उपादेय / आदरणीय/ स्वीकार करनेयोग्य है परन्तु स्वीकार कौन करता है? पर्याय। क्योंकि ध्रुव में आदर करना या स्वीकार करना या परिणमन करना, वह उसका स्वभाव नहीं है। वह तो त्रिकाली भगवान ध्रुव है। जिसे परसन्मुख का सब लक्ष्य छूट गया है और मात्र आत्मा ही जिसे दृष्टि में आया है, ऐसे आत्मा को यह आत्मा उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र भी उपादेय नहीं। आहाहा! सर्वज्ञ भगवान... प्रवचनसार की ८० गाथा में ऐसा कहते हैं कि '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' जो अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय जाने, '**सो जाणदि अप्पाणं**' आहाहा! यह तो निमित्त से एक कथन है। समझ में आया?

परद्रव्य का, द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान, वह तो परलक्ष्यी राग है। अरे! नियमसार में आवश्यक अधिकार में भी ऐसा आया है कि अपने द्रव्य-गुण और पर्याय, इन तीन के विचार करता है, वह भी पराधीन है। आहाहा! भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय जानना, वह तो निमित्त से बात है। उस ओर का लक्ष्य छोड़कर... पाठ तो ऐसा है कि '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं सो जाणदि अप्पाणं**' परन्तु ऐसा आत्मा लिया है कि अरहन्त का, सर्वज्ञपने का जिसे अन्तर में परलक्ष्यी ज्ञान में यथार्थ निर्णय हुआ... परलक्ष्यी

ज्ञान... आहाहा! वह अपना स्वलक्ष्य करने के लिये लिया है कि जैसे सर्वज्ञ हैं, वैसा ही मैं हूँ। मेरा स्वभाव ही सर्वज्ञ=सर्व-ज्ञ (है) अपने को और पर को सबको जानने का मेरा त्रिकाल स्वभाव है। उस त्रिकाल स्वभाव का भी नियमसार में उपयोग अधिकार में कहा है, वह त्रिकाल स्वभाव ही स्व-पर को पूर्ण जानता है। जानने का अर्थ कि उसकी शक्ति ऐसी है। समझ में आया? जानती है, वह तो पर्याय है। उस पर्याय में जानने योग्य, आदरनेयोग्य चीज़ क्या है? आत्मा जो त्रिकाली शुद्ध प्रभु... आहाहा! पर्याय को पूर्ण (स्वभाव में) झुकना, पूर्ण स्वरूप में पर्याय को झुकना, वह आत्मा उपादेय कहने में आया है। आहाहा! अब ऐसी बातें लोगों को... बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा!

ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। आहाहा! जिसका सब परलक्ष्य छूट गया, निमित्त का तो छूट गया, राग का भी (लक्ष्य) छूट गया, परन्तु पर्याय का लक्ष्य भी छूट गया। ऐसी पर्याय में त्रिकाली भगवान् पूर्णानन्द का निधान / खान, ऐसा आत्मा उपादेय है। आहाहा! वह आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान में उपादेय जाना, वह भी पर्याय है, उसे भी यहाँ तो परद्रव्य कहने में आया है। सूक्ष्म बात है, भाई! क्योंकि जैसे परद्रव्य में से नयी पर्याय नहीं आती, उसी प्रकार त्रिकाल के आश्रय से संवर, निर्जरा, मोक्ष का मार्ग उत्पन्न हुआ, परन्तु उसमें से नयी शुद्धि की पर्याय नहीं आती, पर्याय में से शुद्धि की पर्याय नहीं आती। द्रव्य में से आती है तो पर्याय को भी परद्रव्य कहकर त्रिकाली को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई!

यह आत्मा औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से... आहाहा! प्रभु! यह उदयभाव जो है, दया, दान, व्रत, भक्ति, विनय आदि विकल्प जो है, वह उदयभाव है, उस उदयभाव से तो अगम्य है। उसके आश्रय से तो नहीं परन्तु उससे भी आत्मा का ख्याल नहीं आता। अब उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक रहे, वे हैं तो निर्मल पर्याय, उनके आश्रय से ख्याल में नहीं आता; इस कारण चार भाव से आत्मा अगम्य और अगोचर कहा गया है। तथापि सम्यग्दृष्टि के उपशमभाव और क्षयोपशमभाव में गोचर होता है। इन चार भाव से अगोचर कहा, अगम्य कहा।

**मुमुक्षु :** आश्रय की अपेक्षा से।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आश्रय की अपेक्षा से। आहाहा! यह तो भूदत्थ मस्सिदो जो (समयसार की) ११वीं गाथा है, उसका विशेष स्पष्टीकरण है। मूल गाथा ११वीं है, वह

पूरे जैनदर्शन का प्राण है। आहाहा! एक समय में अनादि-अनन्त जो भूतार्थ चीज़ है, ऐसा कहना भी ठीक है। वर्तमान में जो पूर्ण है.. आहाहा! वही आत्मा चार भाव से अगम्य है अर्थात्? चार भाव के आश्रय से गम्य नहीं होता। क्षायिकभाव के आश्रय से गम्य नहीं होता। आहाहा! तथापि सम्यग्दृष्टि को गम्य है। इसका अर्थ कि त्रिकाली का आश्रय लिया है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का आश्रय नहीं लिया। जो दृष्टि ने उपादेयरूप से स्वीकार किया है, उस दृष्टि का आश्रय नहीं लिया। समझ में आया? आहाहा!

जो भगवान पूर्ण परमात्मा... लो! यह तुम्हारे परमात्मा याद आये। ये ले गये इंटरव्यू। पढ़ गये हैं। दस पृष्ठ हैं। पढ़े हैं। यह परमात्मस्वरूप, एक समय की पर्याय उसका आदर करती है, परन्तु उस पर्याय का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कठिन लगती है। फिर सोनगढ़वालों ने नया निकाला, ऐसा कहते हैं। नया नहीं, प्रभु! यह तो अनादि का मार्ग है। अनादि के अनन्त तीर्थकर, अनन्त सर्वज्ञों को यह मार्ग है। भरतक्षेत्र में प्रभु का, तीर्थकर का, सर्वज्ञ का विरह पड़ा है। उनका तो विरह पड़ा परन्तु केवलज्ञान का विरह पड़ गया। विरह का अर्थ कि अपने में केवलज्ञान उत्पन्न हो, उसका भी विरह पड़ा है। आहाहा! अपने में। भगवान तो भले भगवान के पास रहे। उनका तो यहाँ विरह है परन्तु केवलज्ञान उत्पन्न होने का विरह हो गया परन्तु केवलज्ञान की पर्याय से भी नजदीक की सम्यग्दर्शन की पर्याय में आत्मा गम्य हो जाता है। आहाहा! अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ (है), उसका विरह नहीं है। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसी बात ली है। दिगम्बर सन्त तो बात करते हैं, कोई सम्यक्त्व से भ्रष्ट होता है, नये कर्म बाँधे, ऐसी बात करे, तथापि मूल बात तो ऐसी कहते हैं कि जिसने यह भगवान आत्मा वर्तमान पर्याय में अन्दर झुकाव करके जो अनुभव किया, वह अनुभव सम्यग्दर्शन और ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीनों साथ में हैं। अनुभव, लक्ष्य, प्रतीति - ऐसे तीन बोल श्रीमद् में हैं। आत्मसिद्धि में हैं। समझ में आया? अनुभव, लक्ष्य, प्रतीति। लक्ष्य, वह ज्ञान है; प्रतीति, वह श्रद्धा है; अनुभव, वह आनन्द का आचरण है। है न? आत्मसिद्धि में है, उसमें कितनी ही बात तो श्रीमद् ने बहुत ऊँची की है। मात्र एक श्वेताम्बर और दिगम्बर की भिन्नता बाहर नहीं आयी। उन्होंने अन्त-अन्त में तो बाहर कर डाली है। सत्शास्त्र के नाम में श्वेताम्बर का एक भी शास्त्र नहीं है, परन्तु उनके भक्तों को छोड़ना कठिन पड़ता है। श्वेताम्बर का आश्रय (छोड़ नहीं सकते)। श्वेताम्बर भी है, दिगम्बर भी है और श्वेताम्बर,

दोनों जैन हैं। यह बात मिथ्या है। समझ में आया? यहाँ तो दिगम्बर में भी जो बात है, वह त्रिकाली के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा न मानकर दया, दान और व्यवहार करते-करते धर्म होगा, वह भी जैन नहीं है। समझ में आया? यह तो वस्तु का स्वरूप है।

भगवान आत्मा देह-देवल में अमृत का पूरा भरा है। अतीन्द्रिय अमृत मधुर स्वाद से भरपूर है। आहाहा! पूर्णस्वरूप है। जैसे कलश होता है न? क्या कहते हैं कलश को? लोटा। लोटा.. लोटा.. बाहर की भाषा भूल जाते हैं। लोटा-लोटा। लोटे में पानी भरा है न, वह पूरा-पूरा भरा है। इसी प्रकार यह लोटा जैसी देह है, देखो! इस देह में भिन्न भगवान अमृत के पूरे से पूर्ण भरा हुआ है। यह देह भी कलश जैसी है न? देखो! यह सिर ऊपर के लोटे जैसा भाग है।

एक बार शास्त्र में से कहा था? तीन प्रकार के विग्रह शरीर कहे हैं। तीन प्रकार के शरीर। एक त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, वह ज्ञान शरीर है। समझ में आया? एक पुण्य-पाप के विकल्प का समूह, वह विकार शरीर है। विग्रहं। उसे विग्रह कहा है। विकार को विग्रह कहा है। ज्ञानस्वरूप को विग्रह कहा है और यह शरीर तो विग्रह है ही। समझ में आया? शरीर विग्रह है; उससे भी रहित है और पुण्य-पाप के असंख्य प्रकार के विकल्प होते हैं, वह भी विग्रह है। शरीर है। विकाररूप एक शरीर है। स्वरूप है। उससे भी भगवान ज्ञान-विग्रहं भिन्न है। वह पूर्ण भरा है, उसे चार भाव से अगम्य कहा। अर्थात् चार भाव के आश्रय से उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! उस त्रिकाली नाथ का आश्रय लेने से (उत्पन्न होता है)। परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा है, परन्तु विश्वास बैठना कठिन पड़े, भाई! दो बीड़ी ठीक से पीवे, तब तो पाखाने में दस्त उतरे। इतने अपलक्षण। अब उसे ऐसा कहना... आहाहा!

भगवान तो ऐसा कहते हैं कि जो छह आवश्यक करता है न? वह शुभभाव के आवश्यक करनेवाला भी धर्म नहीं है, वह परवश है; स्वतन्त्र नहीं। आहाहा! छह आवश्यक व्यवहार है न? यह आवश्यक का परिणाम आता है। भगवान के श्रीमुख से निकली हुई बात है, यह मुखारविन्द से छह आवश्यक की व्याख्या आती है, वह आगम में रचना है, परन्तु वह छह आवश्यक का व्यवहारभाव जो है, वह भी परवश है। वह प्राणी परवश है, पराधीन है, स्वतन्त्र स्ववश नहीं है। आहाहा! यहाँ तो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, ज्ञान का पुंज है। उस पूर्ण का आश्रय लेने से आवश्यक अर्थात् जो क्रिया आवश्यक करने योग्य है, वह क्रिया यह है, अवश्य करने योग्य तो यह है। आहाहा!

वहाँ ( प्रवचनसार की ) ८०वीं गाथा में लिया है, जिसे अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान होता है, उसे आत्मा का ज्ञान होता है, ऐसा कहा है। वह निमित्त से व्याख्या की है। यहाँ तो स्व-आत्मा, उसके तीन भाग का विचार करे कि यह द्रव्य है, यह गुण है, पर्याय है, वह भी विकल्प और राग और परवश / पराधीन दुःखी है। आहाहा! कठिन बात है। ८०वीं गाथा में तो परद्रव्य की बात की है। अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, वह आत्मा को जाने, तो परद्रव्य का ज्ञान तो अनन्त बार किया है। समझ में आया? भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया है और सीधे दिव्यध्वनि सुनी है। महाविदेह में अनन्त बार जन्मा है। महाविदेह में तीर्थकर का विरह कभी नहीं होता।

त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का विरह कभी नहीं होता। क्या कहा? त्रिकाल ज्ञेय है तो त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का विरह कभी होता ही नहीं। आहाहा! जैसे त्रिकाल वस्तु है, वैसे त्रिकाली जाननेवाला भी अनादि से है। मनुष्य क्षेत्र में सर्वज्ञ का अभाव कभी नहीं होता। आहाहा! परन्तु उन सर्वज्ञ का विरह, द्रव्य-गुण-पर्याय का निर्णय किया तो आत्मा को जानता है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार से कथन है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह द्रव्य-गुण और पर्याय जैसे भगवान को देखे, वैसे मेरी चीज द्रव्य परिपूर्ण, गुण परिपूर्ण है, पर्याय में अल्पज्ञता है; वह पर्याय, द्रव्य का आश्रय करे, तब पर्याय और गुण अभेद होकर सम्यग्दर्शन होता है, तब अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान लक्ष्य में नहीं रहता। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। क्यों? कि ( कारणपरमात्मा )... भगवान आत्मा कारणपरमात्मा आहाहा! कहा था न? अभी एक प्रश्न आया था। वीरजीभाई का लड़का आया था। वारिया, गुजर गया। इस काठियावाड़ में दिगम्बर का अभ्यास पहला-पहला वीरजीभाई को था। बहुत वर्ष हुए। जामनगर में वीरजी वकील थे। वे तो ९०-९१ वर्ष की उम्र में गुजर गये। उनका एक लड़का है। त्रिभुवनभाई ने प्रश्न किया - महाराज! कारणपरमात्मा कहते हो। कारणपरमात्मा कहते हो, तो कारण होवे तो कार्य तो होना ही चाहिए। यह कारणपरमात्मा है न?

कारणपरमात्मा-त्रिकाली भगवान आत्मा-एक समय की पर्याय से भिन्न। आहाहा! ऐसा कारणपरमात्मा स्वरूप भगवान! उसे कारण कहा तो कार्य होना चाहिए। प्रभु! कारण पूर्णानन्द है, यह प्रतीति किसे आयी? जिसे प्रतीति आयी, उसे कारणपरमात्मा है। जिसे

प्रतीति नहीं हुई, उसे तो विकल्प और पर्याय की प्रतीति है, वहाँ कारण वस्तु पूर्णानन्द के नाथ की तो प्रतीति नहीं। समझ में आया ? मार्ग बहुत मुश्किल है, बापू! आहाहा! परन्तु इसकी अपनी वस्तु है। सतत् सुलभ है, ऐसा भी कहा है। निरन्तर सुलभ प्रभु अन्दर है। आहाहा! भगवान विराजता है। तेरी नजर (वहाँ नहीं)। अन्य मत में कहते हैं 'मेरी नजर के आलसे... रे मैं निरख्या न नयने हरि।' हरि अर्थात् आत्मा। पंचाध्यायी में कहा है, 'हरते इति हरि' जो मिथ्यात्व और दोष का नाश करे, वह हरि, वह भगवान आत्मा, उसे यहाँ हरि कहते हैं। वह हरि 'नयन की आलसे रे' नयन की आलसे रे। ज्ञाननेत्र तो है, परन्तु उस ज्ञाननेत्र ने पर के ऊपर लक्ष्य करके ज्ञान किया परप्रकाशक, तो उस परप्रकाशक ज्ञानपर्याय का स्वभाव नहीं। स्वभाव तो स्व-परप्रकाशक है, तथापि अकेला पर का ज्ञान किया, उसमें स्वभगवान आया नहीं, इसलिए वह परप्रकाशक ज्ञान मिथ्या है। समझ में आया ? आहाहा!

यह समयसार की १७वीं गाथा में कहा है न ? पहले में पहले प्रभु! क्या करना ? तो अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, पहले में पहले आत्मा को जानना। वहाँ आगे पहले विकल्प से निर्णय करना, नय-निक्षेप से निर्णय करना। जैसे १३वीं गाथा में आया है, ७३ गाथा में आया है। अमुक निर्णय करना, फिर विकल्प छोड़कर अनुभव करना। वहाँ १७वीं गाथा में तो सीधी बात की है। प्रथम तावत् पहले आत्मा जानना। आहाहा! आत्मा को जानना ऐसा कहा। वहाँ ऐसा कहा है कि अपने ज्ञान की पर्याय में अनादि से आत्मा जानने में आता है। आहाहा! समझ में आया ? क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है, तो स्वप्रकाशक इसकी ज्ञानपर्याय में आता तो है, परन्तु इसकी नजर वहाँ नहीं है। आहाहा!

क्या कहा ? १७वीं गाथा में। कि जो ज्ञान की पर्याय है, तो ज्ञान की पर्याय में अज्ञानी को भी आत्मा जानने में आता है क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से स्वप्रकाशक उसमें आता है। अनादि अज्ञानी के ज्ञान में भी स्वप्रकाशक (जानने में) आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तथापि उसकी नजर पर्याय और राग पर होने से, पर्याय में जानने में आने पर भी जानने में नहीं आया। क्या कहा समझ में आया ? पर्याय का धर्म, ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है।

**'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारि  
ज्ञेयशक्ति दुविधा प्रकाशी निजरूपा पररूपा भासी ॥'**

निज और पर को जानना, वह ज्ञान की पर्याय का स्वरूप ही ऐसा है। अज्ञानी की ज्ञान की

पर्याय का सामर्थ्य इतना है। आहाहा! परन्तु ऐसी ज्ञान की पर्याय में आत्मा जानने में आता है, तथापि नजर उस ओर नहीं है। नजर में राग और पर्याय की नजर में, पर्याय में द्रव्य जानने में आता है, वह सब रुक गया। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया?

पर्याय में राग से नहीं, राग में नहीं। ज्ञान की पर्याय में भगवान त्रिलोकनाथ यहाँ आत्मा जो कहते हैं, वह उसका स्वभाव है, इसलिए ज्ञान में तो आता है। आता है, तथापि उसकी दृष्टि द्रव्य पर नहीं है; उसकी दृष्टि पर्याय पर होने से पर्याय को ही जानता है। पर्याय में द्रव्य जानने में आता है, यह बात भूल जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! वीतरागमार्ग अलौकिक है। यह कहीं साधारण मनुष्य का काम नहीं है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। ( कारणपरमात्मा ) द्रव्यकर्म,... जड़। ज्ञानावरणीय आदि जड़कर्म से रहित प्रभु है। भावकर्म और दया, दान के विकल्प से तो प्रभु भिन्न है। आहाहा! अन्दर में त्रिकाली प्रभु भिन्न है। दया, दान, भगवान की भक्ति, जिस भाव से तीर्थकर गोत्र बँधे, वह भाव भावकर्म है, उससे भी प्रभु तो रहित है। आहाहा! ऐसे पूर्णानन्द आत्मा की अन्दर में प्रतीति आना.. आहाहा! और प्रतीति आकर अन्दर अनुभव करने में आना। आहाहा! प्रतीति व्यवहार कहा। समझ में आया? वह द्रव्यकर्म से रहित है, भावकर्म से रहित है। और नोकर्मरूप उपाधि से जनित विभावगुणपर्यायों रहित है... आहाहा!

वास्तव में तो राग से-विभाव से तो रहित है परन्तु मति-अज्ञान आदि को भी विभाव गुण-पर्याय कही है। अरे! नियमसार में पहले शुरुआत में उपयोग के अधिकार में तो सम्यक् मतिज्ञान को भी विभावगुणपर्याय कहा है। उससे भी रहित है। जिस मतिज्ञान में... आहाहा! स्व जानने में आया, परन्तु उस मतिज्ञान से भी वस्तु रहित है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। मतिज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान का अंश है, वह केवलज्ञान का अंश है। एक बार यह भी प्रश्न हुआ था कि केवलज्ञान का अंश कहाँ है? वह मिथ्या है, क्योंकि केवली को तो चार घाति का नाश करके पूर्ण केवलज्ञान होता है। उसका अंश नीचे नहीं होता। बड़ी चर्चा चली थी... कि तुम केवलज्ञान का अंश कैसे कहते हो? मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सम्यक्ज्ञान है, वह केवलज्ञान का अंश है, तो केवलज्ञान तो घातिकर्म का नाश करके पूर्ण होता है। तो क्या वह पूर्ण का अंश है? हाँ। समझ में आया?

जयधवल में एक पाठ आया है कि एक स्तम्भ है, स्तम्भ। स्तम्भ में एक भाग होता है न? एक भाग देखने से पूरा अवयवी है, उसका यह अवयव है। पूरे स्तम्भ का एक



हाशिया देखने से, पूरा स्तम्भ अवयवी है। उसकी हाश होती है न? तुम्हारे क्या शब्द है? भाग। एक भाग। एक भाग देखते हैं, वह अवयव है। जो उसे देखता है, वह अवयवी को भी देखता है। आहाहा! उसी प्रकार मतिज्ञान को भी यथार्थ देखता है तो वह मतिज्ञान भी केवलज्ञान का अंश है, अवयवी का अवयव है, अतः मतिज्ञान में भी केवलज्ञान की यथार्थ प्रतीति होती है। आहाहा! और केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, वह सर्वज्ञ स्वभाव में से उत्पन्न होती है, अतः जिसे मतिज्ञान में यथार्थ आया, उसे सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की भी प्रतीति आ गयी। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! वीतराग का मार्ग अलौकिक है। लोगों ने तो लौकिक जैसा बना दिया है। यह तो अलौकिक बातें हैं, यह ऐसा कहते हैं, देखो!

( कारणपरमात्मा ) द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप उपाधि से जनित विभावगुणपर्यायों... तो मतिज्ञान को भी विभावगुणपर्याय कहा है। समझ में आया? राग से तो भिन्न है, परन्तु मतिज्ञान विभावगुणपर्याय से भी प्रभु तो भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? उपाधि से जनित... आहाहा! विभावगुणपर्यायों रहित है... क्योंकि मतिज्ञान में भी अभी ज्ञानावरणीय का निमित्तपना है और अपने में हीनपना स्वयं से है। ऐसी हीनदशा है, उसे वहाँ विभावगुणपर्याय कहा है। उससे भगवान रहित है। आहाहा!

जिस ज्ञान में वस्तु ज्ञात हो, मतिज्ञान में वस्तु ज्ञात हो, उस विभावगुणपर्याय से वस्तु रहित है। आगे है। मतिज्ञान आदि चार को विभावगुणपर्याय कहा है। उपयोग में आ गया है। १०-११ गाथा में। मतिज्ञान को भी विभावगुणपर्याय कहा है। अब जानने में मतिज्ञान से आता है। सम्यक् मतिज्ञान जहाँ अन्तर में ढलता है... आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु जहाँ विराजता है, उसके तल में जाता है, उसके पाताल में जाता है। इस पाताल का तो अन्त है। कहा था न? यहाँ पानी के पाताल का अन्त है क्योंकि पानी चाहे जितना गहरा हो... यह समुद्र है न? वहाँ नहीं कहा था? कि समुद्र बहुत गहरा लगता है। बहुत गहरा समुद्र परन्तु उस समुद्र के तल में तो नारकी का एक हजार योजन का पासडा है। समझ में आया? उस हजार योजन के नीचे नारकी है। इसलिए पानी का समुद्र कोई कहता था अमुक जगह बहुत गहरा। अपने में से कोई कहता था।

**मुमुक्षु :** प्रशान्त महासागर.....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। यह कहता था। अमेरिका का महासागर बहुत गहरा... बहुत



गहरा कहते हैं, तो भी उसके नीचे नारकी का स्थल है, अतः पाताल का तो अन्त आ गया। यहाँ तो पाताल का अन्त लेनेवाली चीज़ है, वह चीज़ (पर्याय) अन्दर में नहीं। आहाहा! उस पाताल में तो अनन्त-अनन्त गुण हैं न? तो पाताल का अन्तिम अन्त तो उसमें नहीं। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुणा अनन्त बार करो। अनन्त को अनन्त बार.. अनन्त बार.. अनन्त बार गुणा करो। एक अनन्त को एक अनन्त से गुणा करने पर जो आवे, उसे वापस दूसरे अनन्त गुणे, ऐसा अनन्त बार गुणा करो तो भी आखिर का अन्त आत्मा के गुण की संख्या में नहीं आता। आहाहा! ऐसा गहरा पाताल तल है। अपनी एक समय की पर्याय में अन्तर आत्मा अन्तर में तल है। पर्याय उसका पता (थाह) भी लेती है, परन्तु वह पर्याय विभावगुणपर्याय होने से अन्तर में नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अब वे (कहते हैं), व्रत करो, अपवास करो, सीधा-सट्ट (था)। देवदर्शन करना, मन्दिर बनाना, हमेशा भगवान की स्तुति करना, गा-गाकर स्तुति करे, वह भाषा तो जड़ है और स्तुति करने का विकल्प, वह तो राग है। आहाहा! आत्मा में उस राग का तो अभाव है, परन्तु मतिज्ञान में जो आत्मा ख्याल में आया, वह मतिज्ञान विभावगुणपर्याय है। आहाहा! है?

**उपाधि से जनित...** कहा है। जनित का अर्थ निमित्त। इतना कर्म अभी निमित्त है न? आहाहा! चार भाव को भी आवरणसहित कहा है। इसमें चार भाव को आवरणसहित कहा है। आवरणसहित का अर्थ? कि आवरण उदय में निमित्त है और तीन में आवरण का अभाव है, इतनी अपेक्षा आयी तो इन्हें आवरणसहित कहा है और त्रिकाली परमात्मस्वरूप सकल त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ से आती है? यह तो पूरे दिन भगवान के दर्शन करना और भटका-भटक करे, क्या कहलाता है वह? झांझर बजावे और भगवान की स्तुति की, भगवान का मन्दिर बनाया, पाँच लाख खर्च किये, पच्चीस लाख खर्च किये। लो! अफ्रीका में बीस लाख का मन्दिर बनता है। दो हजार वर्ष में कभी भी दिगम्बर मन्दिर नहीं बना। तो उन्हें कहा कि देखो भाई! मन्दिर तो मन्दिर से बनता है। तुम्हारा भाव है, वह तो शुभभाव है; धर्म-वर्म नहीं। वह व्याख्यान में आये थे। एक रायचन्दभाई हैं। कहाँ गये रामजीभाई? रामजी... के भानेज हैं। लड़का-लड़की नहीं, माँ है। दो लाख और दो हजार तो मन्दिर में, क्या कहलाता है वह? शिलान्यास। शिलान्यास के समय दो लाख और दो हजार रुपये दिये हैं। अफ्रीका, नैरोबी। रामजीभाई हैं। नहीं आये? उस ओर ओहो..! ठेठ बैठे। उनकी बहिन का लड़का है। पति-पत्नी दो ही हैं और

माँ है, बस। बाकी लड़का-लड़की नहीं। बहुत पैसा होगा, तो मन्दिर का मुहूर्त किया। नैरोबी में दिगम्बर मन्दिर। वे लोग श्वेताम्बर थे। आठ घर तो करोड़पति हैं और दूसरे १५-२०-२५ लाख वाले के घर। यह हमारे किशोरभाई के भाई आये हैं न, इनके पास भी बहुत पैसा है। बहुत लाख हैं, परन्तु वह कहीं पैसे से धर्म हो और मन्दिर बनाने से धर्म होता है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि विभावमतिज्ञान है, उसका भी तुझमें अभाव है। तुझमें अभाव है तो उसके आश्रय से तुझे अनुभव कैसे होगा? आहाहा! जिसका तुझमें अभाव है, उसके आश्रय से भाव ज्ञान में किस प्रकार आवे? आहाहा! कपूरचन्दजी! यह कपूर की सुगन्ध अन्दर ऐसी है। आहाहा! भगवान अन्दर आनन्द का नाथ **विभावगुणपर्यायों रहित है तथा अनादि-अनन्त...** आहाहा! वह तो आदि और अन्त रहित चीज़ है.. है... है.. है। जिसकी आदि (शुरुआत) नहीं, जो सत् है उसकी आदि क्या? है, उसकी शुरुआत क्या? है, उसकी शुरुआत या यह हुआ, ऐसा कहाँ है? समझ में आया? आहाहा!

यह हमारे पालेज में चर्चा हुई थी। (संवत्) १९६५-६६ की बात है। पालेज में दुकान थी न, वहाँ एक बड़े वेदान्ती आये थे और एक कबीर के साधु आये थे। वहाँ दुकान के पीछे धर्मशाला है। दोनों के बीच बड़ी चर्चा हुई। हम जैन थे तो वहाँ गये थे। छोटी उम्र थी। तब १८-१९ वर्ष की उम्र थी। दोनों के बीच चर्चा चलती थी, वह हम जैन सुनते थे। कबीर उनसे पूछते थे कि इस जगत को ईश्वर ने बनाया, तब ईश्वर कहाँ खड़ा था? ईश्वर कहाँ खड़ा था तो यह बनाया? खड़ा रहा तो वह एक चीज़ हो गयी। यह कबीर (पंथी) ने प्रश्न किया था। उसको कहा, मुझे जबाव दो। वह कहे, मेरा शिष्य हो तो जबाव दूँगा, परन्तु पहले मुझे जबाव तो दे। हम जैन लोग देखने गये थे। कबीर के साधु ने हमारी ओर नजर की और कहा - क्यों भाई? मैंने कहा, बात बराबर है। ईश्वरकर्ता हो तो पहले तो ईश्वर को किसने बनाया, इसके बाद बात है परन्तु ईश्वर जहाँ खड़ा है, तो उसे बनाने की सामग्री कहाँ से लाया? बनाने की सामग्री तो नहीं थी। समझ में आया? पहले से हमारे छोटी उम्र में चर्चाएँ होती थी न! घर की दुकान थी। मैंने कहा, तेरी बात सत्य, भाई! ईश्वर कर्ता हो तो...

श्रीमद् ने तो ऐसा कहा कि ईश्वर कर्ता होवे तो, ईश्वर (कर्ता) नहीं, (ऐसा कहनेवाले को) उसने जन्म क्यों दिया? समझ में आया? श्रीमद् ने ऐसा कहा कि ईश्वर नहीं, ऐसा

कहनेवाले जैन हैं, उन्हें ईश्वर कर्ता हो तो जन्म क्यों दिया ? श्रीमद् लिखते हैं, मोक्षमाला में लिखा है। परमात्मा यदि कर्ता हो तो, 'परमात्मा ईश्वर जगत का कर्ता नहीं है', ऐसा माननेवाले को जन्म क्यों दिया ? तुम्हारी सब बात मिथ्या है।

यहाँ क्या कहा ? अनादि-अनन्त के ऊपर से यह बात चली है।

**अनादि-अनन्त...** है। यह आदि भी नहीं। आहाहा! है, उसकी शुरुआत क्या ? और है, उसका अन्त कैसा ? और है, उसे स्वभाव से रहित कहाँ ? समझ में आया ? तीन बोल कहे। ये तीन समयसार की ७६ गाथा में है। है, उसकी आदि कैसी ? और है, उसका नाश किस प्रकार हो ? और है, चीज़ जो है, वह स्वभाव से खाली कहाँ है ? आहाहा! वह अनादि-अनन्त है। अब स्वभाव कहते हैं। इससे पहले काल कहा।

**अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला...** देखो! क्योंकि जो है, वह स्वभाववान है, तो स्वभाववान स्वभाव बिना नहीं रहता। स्वभाववान आत्मा, वह स्वभाव बिना नहीं रहता। कैसा स्वभाव ? अतीन्द्रिय अमूर्त। अतीन्द्रिय स्वभाववाला.. आहाहा! भाई! थोड़े शब्दों में यह तो सन्तों की वाणी है, बहुत गूढ़ है, बहुत गूढ़ है। एक तो प्रभु का आदि-अन्त नहीं; और अतीन्द्रिय-स्वभाववाला, उसका अतीन्द्रियस्वभाव है। इन्द्रिय से तो पता नहीं लगता। आहाहा! परन्तु पर्याय से अथवा पर्याय के आश्रय से भी पता नहीं लगता, ऐसा उसका अतीन्द्रियस्वभाव है। आहाहा! उस अतीन्द्रियस्वभावी चीज़ का अतीन्द्रियस्वभाव से पता लगता है। उसकी पर्याय में अतीन्द्रियस्वभाव प्रगट हो, उसे अतीन्द्रियस्वभाव का अनुभव होता है। समझ में आया ? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द से तो परिपूर्ण भरपूर है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द तो उसका स्वभाव है। स्वभाव अर्थात् ? स्व-भाव—अपना भाव—भाववान का स्वभाव—स्वभाववान का स्वभाव। ऐसा ( अमूर्त ) अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध... प्रभु तो त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा! पर्याय में अशुद्धता दिखती है, वस्तु में अशुद्धता नहीं। आहा..हा..!

**सहज.. स्वाभाविक परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है...** आहाहा! देखो! जिसका स्वभाव परमपारिणामिकभाव। मात्र पारिणामिकभाव नहीं कहा। क्योंकि पर्याय को भी पारिणामिक कहते हैं। क्या कहा ? जयधवल में पर्याय को भी पारिणामिकभाव कहा है। अरे! राग को पारिणामिक कहा है। उदय, उपशम, क्षयोपशम को भी पारिणामिक कहा

है। पर्याय है, उसे पारिणामिक कहा, परन्तु परमपारिणामिक नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

**परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है...** आहाहा! सहजस्वरूप त्रिकाल है। परमपारिणामिक अर्थात् सहज स्वभाव। जिसे गाथा ६ में ज्ञायक कहा, ११वीं गाथा में भूतार्थ कहा, उसे यह पारिणामिकभाव कहा है। (समयसार) ६ गाथा में प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय से रहित है, ऐसा कहा और वह प्रमत्त-अप्रमत्त से रहित न हो तो शुभ-अशुभभावसहित हो, तो शुभ-अशुभभाव तो अचेतन जड़ है। भगवान तो ज्ञान से भरपूर परिपूर्ण चैतन्य रसकन्द है। वह चैतन्यरस कभी भी जड़रूप नहीं होता। शुभ-अशुभभाव, वे जड़ हैं। आहाहा! है इसमें? समयसार गाथा ६ में है। समझ में आया?

वह तो त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! परमपारिणामिकभाव। जयधवल में तो राग को भी पारिणामिकभाव कहा है। शुभ-अशुभभाव को भी पारिणामिकभाव कहा है। क्योंकि पारिणामिकभाव की पर्याय है, इसलिए (कहा है)। यहाँ तो कहते हैं कि उस वस्तु से रहित यह तो परमपारिणामिकभाव है। केवलज्ञान की पर्याय को भी पारिणामिक कहा है। वह है व्यवहारनय-सद्भूतव्यवहारनय। अंश है न? यह तो परमपारिणामिक प्रभु, त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु। आहाहा!

**परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा,...** आहाहा! ऐसा कारणपरमात्मा। आहाहा! त्रिकाली वस्तु को यहाँ कारणपरमात्मा कहा है। कारणपरमात्मा कहो, कारणजीव कहो, ध्रुव कहो, सामान्य कहो, भूतार्थ कहो, ज्ञायक कहो, सब एक ही है। आहाहा! ऐसी बात अलौकिक है, बापू! अनन्त काल हुआ। दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ परन्तु अन्तर स्पर्श नहीं किया। इस क्रियाकाण्ड में धर्म है और इससे लाभ होगा, ऐसा मानकर उसमें घुस गया। पंच महाव्रत और अट्टाईस मूलगुण, वह राग / उदयभाव है। उदयभाव से पारिणामिकभाव प्रगट होगा, (ऐसा माना)। आहाहा! यहाँ तो परमपारिणामिक-स्वभाव प्रगट ही है।

(समयसार) ११वीं गाथा में कहा है। जहाँ **भूदत्थमस्सिदो** कहा न? वहाँ ऐसा कहा है कि ज्ञायकभाव आविर्भाव होता है। ऐसी टीका है। ज्ञायकभाव आविर्भाव होता है? पाठ तो ऐसा है। ११वीं गाथा में। **भूदत्थमस्सिदो** और ज्ञायकभाव तिरोभूत होता है, ऐसा कहा है। संस्कृत टीका है। ११वीं गाथा। इसका अर्थ कि जिसे पर्याय में ख्याल में नहीं

आया, उसे ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है और ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, आविर्भाव हुआ। ज्ञायकभाव तो प्रगट है वह है, परन्तु जिसकी पर्याय में ख्याल आया, उसे ज्ञायकभाव है, ऐसा प्रगट हुआ। प्रतीति में आया तो प्रगट हुआ, (ऐसा कहा)। है, वह प्रगट हुआ। आहाहा! और वहाँ तो ऐसा कहा कि ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है। द्रव्य कभी तिरोभूत होता है? द्रव्य कभी आवरण में आता है? द्रव्य तो त्रिकाली निरावरण है। द्रव्य को त्रिकाल निरावरण कहना और फिर तिरोभूत कहना! आहाहा! यह तो अपनी पर्याय में परलक्ष्य है तो ज्ञायकभाव जो वस्तु है, उसके ख्याल में आयी नहीं तो पर्यायवाले को (अर्थात्) पर्यायदृष्टिवाले को तिरोभूत हो गया। वह तो है वह है। वहाँ कोई तिरोभूत और आविर्भूत नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

वह यहाँ कहते हैं। **ऐसा कारणपरमात्मा,...** आहाहा! **वह वास्तव में 'आत्मा' है।** देखो! पर्याय को छोड़कर मात्र त्रिकाली स्वभाव, वही वास्तव में आत्मा है। आहाहा! जो पर्याय से ख्याल में आया, वह पर्याय भी आत्मा नहीं है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** उसका विषय आत्मा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो उसे विषय किया है न? विषय हुआ वह आत्मा... आहाहा! जो त्रिकाली आत्मा, वह निश्चय आत्मा है। पर्यायरहित त्रिकाली, वही निश्चय आत्मा है। आहाहा! सबेरे तो ऐसा आया था कि जीव अपने परिणाम से परिणमे, वह जीव ही है। बापू! कौन सा अधिकार चलता है और किस अपेक्षा से चलता है, यह बात समझनी चाहिए। 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ-वहाँ समझना वह।' जहाँ-जहाँ योग्य है, तदनुसार समझना। सबेरे ऐसा कहा था, जीव तावत् क्रमबद्ध अपने परिणाम से उत्पन्न होनेवाला जीव ही है। परिणाम से उत्पन्न हुआ, जीव ही है। यहाँ कहते हैं कि परिणाम आत्मा में है ही नहीं।

**मुमुक्षु :** सबेरे ऐसा कहते हैं, शाम को ऐसा कहते हैं.....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा कहते हैं? यह हमारे फावाभाई कहते थे। हमारे फावाभाई थे न? बुद्धि थोड़ी और यहाँ सुनें। महाराज! तुम सबेरे कुछ कहते हो और दोपहर को कुछ कहते हो। निर्णय करने की ताकत नहीं होती। फावाभाई थे न? उनके पुत्र सूरत में हैं न! मनहरभाई करोड़पति हैं। एक करोड़ रुपये हैं। सूरत में हैं। यहाँ रहते थे। वहाँ हमारे पालेज में रहते थे। हमारे सगे-सम्बन्धी। दुकान पालेज में है। यह तो ७० वर्ष पहले की बात है।

उनकी बुद्धि साधारण। सबेरे कुछ आवे और दोपहर को कुछ आवे। इसमें हमें निर्णय क्या करना ?

भाई! सबेरे किस अपेक्षा से कहा ? सबेरे तो ऐसा कहा कि अपने में निर्मल परिणाम से आत्मा उत्पन्न होता है, उसे जीव कहा है। वह निर्मल स्वभाव है न, निर्मल गुण है, उसके आश्रय से निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई तो इस अपेक्षा से उसे आत्मा कहा। यहाँ तो कहते हैं कि जो निर्मल परिणाम हैं, उनसे रहित जो त्रिकाली है, उसे हम तो आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? है ?

**शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है।** वह वास्तव में आत्मा है। पर्याय भी आत्मा तो है, परन्तु व्यवहारनय से है, अभूतार्थ। आहाहा! साधारण लोगों को अभ्यास न हो, उन्हें ऐसा लगता है। बापू! अभ्यास करना पड़ेगा। ऐसा समय और मनुष्यपना मिला, मनुष्यपना चला जायेगा। आहाहा! और कहाँ जायेगा ? कहाँ अवतार होगा ? आहाहा! क्या कहलाता है उड़े उसे, आँधी, उड़ती है न ? क्या कहते हैं आँधी को ? उसका तिनका कहाँ जाकर पड़ेगा ? वायु होती है न ? तिनका ऐसे-ऐसे होता है। इसी प्रकार मिथ्यात्व में पड़े हुए प्राणी का अवतार क्या होगा ? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं ? दूसरी जगह कहते हैं कि पर्यायरहित आत्मा होता नहीं। 'पर्यायविजुत्तंदव्वं' पंचास्तिकाय में पाठ है। 'पर्यायविजुत्तंदव्वं' वह बात बराबर है। परन्तु यहाँ कहते हैं कि जो त्रिकाली आत्मा है, उसे ही हम आत्मा कहते हैं। पर्याय को हम निश्चय आत्मा नहीं कहते। निर्मल पर्याय को भी हम निश्चय आत्मा नहीं कहते; वह व्यवहार आत्मा है। आहाहा! भाई! अरे! मोक्षमार्ग की पर्याय को भी व्यवहार आत्मा कहा है। यहाँ तो परद्रव्य कहा है न! आहाहा! ऐसी बातें हैं।

**वह वास्तव में 'आत्मा' है।** आहाहा! स्वभाव से परिपूर्ण प्रभु एकरूप, कभी भी हीन नहीं होता, कभी भी आवरण नहीं, कभी भी विपरीत नहीं। अविपरीत, आवरणरहित, पर्यायरहित पूर्ण स्वरूप जो है, उसे यहाँ वास्तव में आत्मा कहने में आया है। वह आत्मा उपादेय है। है न ? आहाहा! **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! अति निकट, जिनका संसार अल्प है, ऐसे भव्य जीवों को ऐसे निज परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कुछ उपादेय नहीं है। फिर विशेष बात आयेगी.....

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव ! )